6382
आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.
जि. गांधीनगर, पिन-382009.

# तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । मार्च १९९४ । एकादश अंक

जैन भवन

तित्थयर

# तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १७ : अंक ११
मार्च १९९४

☐

संपादन
**राजकुमारी बेगानी**
**लता बोथरा**

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
**जैन भवन**
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०००००७

☐

मुद्रक
**अनुप्रिया प्रिन्टर्स**
६ ए, बड़ौंदा ठाकुर लेन
कलकत्ता-७

## सूची

| | |
|---|---|
| ऋषभ देव तथा शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ | ३२३ |
| जैन रामकथा का स्वरुप व विकास | ३३० |
| जैन धर्म एक व्याख्या | ३४१ |
| त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र | ३४३ |
| जैन पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या | ३५२ |

देवता

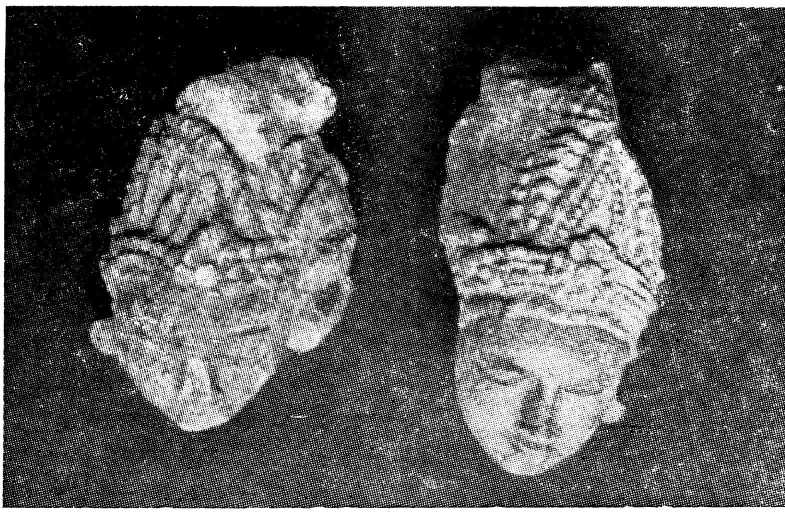

देउलभिद्या, बांकुरा

# ऋषभदेव तथा शिव-सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ

**श्री राजकुमार जैन** ( एम० ए०, पी० एच० डी० )

( पूर्वानुवृत्ति )

पउमचरिउ में उल्लिखित 'रुद्राष्टक' इस तथ्य का द्योतक है कि इस रचना के समय तक वैदिककालीन रुद्र ने कापालिक एवं पौराणिक युग के लोकप्रचलित स्वरूप को अंगीकार कर लिया था जिसका जैन परम्परानुरूपी समन्वय उक्त 'अष्टक' के रचयिता ने अपनी रचना में करके अपनी परम्परागत रुद्रभक्ति का परिचय दिया। वीरसेन स्वामी द्वारा अर्हन्तों का पौराणिक शिव के रूप में किया गया चित्रण भी इसी तथ्य की ओर इङ्गित करता है।

स्वयं महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने महापुराण में एक स्थल पर भगवान् बृषभदेव के लिये रुद्र की ब्रह्मा-विष्णु-महेश रूपी त्रिमूर्ति से सम्बन्धित अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। भगवान का यह एक संस्तवन है, जिसे उनके केवल ज्ञान होने के पश्चात् सौधर्म तथा ईशान इन्द्र ने प्रस्तुत किया है। स्तवन में भगवान् की जय मनाते हुए कहा गया है[१] कि वह दुर्मथ कामदेव का मन्थन करने वाले हैं, दोष-रोष रूपी मांस के लिये अग्नि के समान हैं, सम्पूर्ण विशुद्ध केवल ज्ञान के आवास हैं, और मिथ्या मार्ग से सन्मार्ग प्राप्ति के विधारक हैं। वह[२] कंकाल, त्रिशूल, मनुष्य कपाल, विषधर तथा स्त्री से रहित हैं, शान्त हैं, शिव हैं, अहिंसक हैं राजन्यवर्ग उनके चरणों की पूजा करता है। परोपकारी हैं, भीति दूर करने वाले हैं, परन्तु अपने

---

१. जय दुम्महवम्महणिम्महण दोस-रोस-पशुत्पास-सिहि,
जय सयलविमलकेवलणिलय हरण-करण-उद्धरणविहि।

२. जय कंकालसूलणरकंदलबिसहरबिलयबिरहिया,
जय भगवन्त सन्त सिब सकिद णिवंचियचरण परहिया।
जय सुकइ कहियणीसेसनाम भामंथन णियरिउबग्गभीम,
बामाबिमुक्क संसारवाम जय तिउरहारि हरहीरधाम।
जय पयडियधुससयंभुभाव जयजय संयभू परिगणिय भाव,
जय संकर संकर दिहियसंति जय ससहर कुवलदिण्णकंति।
जय रुद्द रउद्दतबग्गगामि जय जय भवसामि भबोवसामि,
महएव महागुणगणजसाल महकाल पलयकालुग्गकाल।
जय जय गणेस गणबइजणेर जयदंभपसाहिय दंभचेर,
वेयंगदाइ जयकमलजोणि आई वराह उद्धरियखोणि।
सहिरण्णबिट्टि पडिवण्णगब्भ जयदुण्णयणिहण हिरण्णगब्भ,
जय परमाणेत चउक्कसोह भावंधसारहर दिवसणाह।
जय जण्णपुरिस पसुजण्णणासि रिसिसंस अहिंसाधम्मभासि॥

अन्तरंग रिपुवर्ग के लिये भयंकर हैं, वामाविमुक्त (स्त्री रहित) हैं, परन्तु स्वयं संसार के लिये वाम (प्रतिकूल) हैं, त्रिपुरहारी (जन्म जरा मृत्यु) अथवा मिथ्यादर्शन, ज्ञान चारित्र रूपी त्रिपुर के विनाशक हैं, हर हैं, धैर्यशाली हैं, निर्मल स्वयं बुद्ध रूप से सम्पन्न हैं, स्वयंभू हैं, सर्वज्ञ हैं, सुख तथा शान्तिकारी शंकर हैं, चन्द्रधर हैं, सूर्य हैं, रुद्र हैं, उग्र तपस्वियों में अग्रगामी हैं, संसार के स्वामी हैं, तथा उसे उपशान्त करने वाले हैं, महादेव हैं, महान् गुणगणों से यशस्वी हैं, महाकाल हैं, प्रलयकाल के लिए उग्रकाल हैं, गणेश (गणधरों के स्वामी) हैं, गणपतियों (वृषभसेन आदि गणधरों) के जनक हैं, ब्रह्म हैं, ब्रह्मचारी हैं, वेदांगवादी (सिद्धान्तवादी) हैं, कमल योनि हैं, पृथ्वी का उद्धार करने वाले आदि वराह हैं, सुवर्ण वृष्टि के साथ गर्भ में अवतीर्ण हुए हैं, दुर्भय के निवारक हैं, हिरण्यगर्भ हैं, (युगसृष्टा हैं) परमानन्दचतुष्टय (अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्य) से सुशोभित हैं, अज्ञानान्धकारहारी हैं, दिवसनाथ हैं, यज्ञपुरुष हैं, पशुयज्ञ के विनाशक हैं, ऋषि-सम्मत अहिंसाधर्म के प्रकाशक हैं,[1] माधव, (अन्तरंगबहिरंग लक्ष्मी के स्वामी) हैं, त्रिभुवन के माधवेश हैं, मद्यरूपी मधु को दूषित करनेवाले मधुसूदन हैं, लोकदृष्टा परमात्मा हैं, गोवर्द्धन (ज्ञानवर्धक) हैं, केशव हैं और परमहंस हैं। इन्द्र कहते हैं—भगवान को संसार में केशव कहा जाता है जो रागी हो (यःकेशेषु रागवान् स 'केशवः'[2] जो केशों में अनुरागी हो उसे केशव कहते हैं), परन्तु तुम तो वीतरागी हो, अतः तुम्हारे अन्दर वह केशवत्व कैसे आ सकता है ? केशव[3] के अन्य प्रश्नमूलक शाब्दिक तात्पर्य को

---

१. 'जय माहव तिहुबणमाहवेस महुसूयण दूसियमहुविशेष,
जयलोपणिओइय परमहंस गोवद्धण केसव परमहंस।
जगि सो केसउ जो रायबंत तुह णोरायहु, कहिं केसवत्तु:—'महापुराण' १०,५।

२. देखिये, महापुराण १०,५ का टिप्पणी।

३. के सब ते सब जे पई हसंति जड पावपिण्ड रउरवि वसंति,
जय वांसव का सबबिहि तुमम्मि णेरंतरू चित्ति णिरोहु जम्मि।
जय-गवण हुयासनचन्द रवि जीवय महि कारुय सलिल,
अट्ठंगमहेसर जय सयल पक्खालिय कलिमलकलिल ।।—'महापुराण' १०-५।
तुलना कीजिये :
या सृष्टि सृष्टाराद्या वहति विधिहुतं या हवियो च होत्रो ये
द्वे सन्ध्ये रिधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्य।
यामाहु 'सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः 'प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः
—अभिज्ञानशाकुन्तल १, १ तथा मालविकाग्निमित्र १,१।।

लेकर इन्द्र कहते हैं—भगवन्, वास्तव में वे ही जड़ हैं जो तुम्हारा उपहास करते हैं और ऐसे जन का नरक-वास ही निश्चित है। भगवन् तुम काश्यप हो, जड़-आचार से विहीन हो, एकाग्रचिन्तानिरोधपूर्वक ध्यानी हो, आकाश, अग्नि, चन्द्र, सूर्य यजमान, पृथ्वी, पवन, सलिल—इन आठ शरीरों का युक्त महेश्वर हो, परमौदारिक शरीर से युक्त हो। कलिकाल के समस्त पाप-पंक से मुक्त[१] हो, सिद्ध हो, बुद्ध हो, शुद्धोदनि हो, सुगत हो, कुमार्गनाशक हो, बैकुण्ठवासी विष्णु हो, दामोदर हो तथा परवादियों की वासना को नष्ट करने वाले हो।

महाकवि पुष्पदन्त के उल्लिखित संस्तवन के अध्ययन से प्रतीत होता है कि भगवान् वृषभदेव के रूप में ही शिव के त्रिमूर्तिरूप तथा बुद्ध रूप को भी समन्वित कर लिया गया है। यद्यपि समन्वय क्रिया पुष्पदन्त द्वारा जैन दृष्टि को सम्मुख रखकर की गई है, परन्तु प्रतीत होता है कि तत्कालीन लोकप्रचलित शिव के एकेश्वरत्व ने भी अंशतः उनके मस्तिष्क पर अवश्य प्रभाव डाला है। पुष्पदन्त का युग जैनधर्म के उत्कर्ष तथा धार्मिक सहिष्णुता का युग था। खजुराहो[२] के १००० ई० के शिलालेख नम्बर ५ में शिव का 'एकेश्वर' रूप में तथा 'विष्णु' 'बुद्ध' और 'जिन' का उन्हीं के अवतारों के रूप में उल्लेख किया जाना इसी तथ्य को पुष्ट करता है। यद्यपि इससे पूर्व पौराणिक काल में धार्मिक संघर्ष ने उग्ररूप धारण किया और चार्वाक, कौल तथा कापालिकों के साथ बौद्ध और जैनों को भी विधर्मी माना गया।[३]

## वृषभ तथा शिव-ऐक्य के अन्य साक्ष्य

कतिपय अन्य लोकमान्य साक्ष्य भी वृषभ तथा शिव—दोनों के ऐक्य के समर्थक हैं जो निम्न प्रकार हैं।

## शिवरात्रि तथा कैलाश

वैदिक मान्यता के अनुसार शिव कैलाशवासी हैं और उनसे सम्बन्धित शिवरात्रि पर्व का वहाँ बड़ा महत्व है।

जैन परम्परा के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने सर्वज्ञ होने के पश्चात् आर्यावर्त्त के समस्त देशों में विहार किया, भव्य जीवों को धार्मिक देशना दी और आयु के अन्त में अष्टापद (कैलाश पर्वत) पहुंचे। वहाँ पहुंचकर योगनिरोध किया

---

१. जय जय सिद्ध बुद्ध सुद्धोयणि सुगय कुमग्गणासणा,
जय बइकुण्ठ बिट्ठु दामोयर हयपरराइवासणा ॥—'महापुराण' १०,६।

२. एफिग्राफिका इण्डिका : भाग १, पृष्ठ सं० १४८।

३. सारपुराण : ३८,५४।

और शेष कर्मों का क्षय करके माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन अक्षय शिवगति (मोक्ष) प्राप्त की।[१]

भगवान् ऋषभदेव ने अष्टापद (कैलाश) में जिस दिन शिवगति प्राप्त की उस दिन समस्त साधु-संघ ने दिन को उपवास तथा रात्रि को जागरण करके शिव गति प्राप्त भगवान् की आराधना की, जिसके फलस्वरूप यह तिथि रात्रि 'शिवरात्रि' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

उत्तर प्रान्तीय जैनेतर वर्ग में प्रस्तुत शिवरात्रि पर्व फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को माना जाता है। उत्तर तथा दक्षिण देशीय पंचागों में मौलिक भेद इसका मूल कारण है। उत्तरप्रान्त में मास का आरम्भ कृष्ण-पक्ष से माना जाता है और दक्षिण में शुक्ल-पक्ष से। प्राचीन मान्यता भी यही है। जैनेतर साहित्य में चतुर्दशी के दिन ही शिवरात्रि का उल्लेख मिलता है। ईशान[२] संहिता में लिखा है :—

**माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।**
**शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः।**
**तत्काल व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिवते तिथिः।**

प्रस्तुत उद्धरण में जहाँ इस तथ्य का संकेत है कि माघकृष्णा चतुर्दशी को ही शिवरात्रि मान्य किया जाना चाहिए, वहाँ उसकी मान्यतामूलक ऐतिहासिक कारण का भी निर्देश है कि उक्त तिथि की महानिशा में कोटि सूर्य प्रभोपम भगवान् आदिदेव (वृषभनाथ) शिवगति प्राप्त हो जाने से 'शिव' इस लिंग (चिह्न) से प्रकट हुए—अर्थात् जो शिव पद प्राप्त होने से पहले 'आदिदेव' कहे जाते थे, वे अब शिव पद प्राप्त हो जाने से 'शिव' कहलाने लगे।

उत्तर तथा दक्षिण प्रान्त की यह विभिन्नता केवल कृष्ण-पक्ष में ही रहती है, पर शुक्ल-पक्ष के सम्बन्ध में दोनों ही एक मत है। जब उत्तर भारत में फाल्गुन कृष्णपक्ष चालू होगा तब दक्षिण भारत का वह माघ कृष्ण-पक्ष कहा जायगा। जैनपुराणों के प्रणेता प्रायः दक्षिण भारतीय जैनाचार्य रहे हैं, अतः उनके द्वारा उल्लिखित माघकृष्ण चतुर्दशी उत्तर भारतीय जन की फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी ही हो

---

१. 'माघस्स किणिह चोद्दसि पुव्वण्हे णियय जन्मणक्खत्ते।
क) अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओज्जोमि।'—तिलोयषण्णत्तो।
ख) ··········घणतुहिणकणाउलि माहमासि।
सूरग्गमिकसणचउद्दसीहि णिब्बुइ तित्थकरि पुरिससीहि।—महापुराण : ३७,३।

२. ईशान संहिता।

जाती है। कालमाधवीय नागर खण्ड में प्रस्तुत मासवैषम्य का निम्न प्रकार समन्वय किया गया है।[१]

**'माघ मासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुणस्य च।**
**कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता।'**

अर्थात् दक्षिणात्य जन के माघ मास के शेष अथवा अन्तिम पक्ष की और उत्तरप्रांतीय जन के फाल्गुन के प्रथम मास की कृष्ण चतुर्दशी 'शिवरात्रि' कही गई है।

## गंगावतरण

उत्तरवैदिक मान्यता के अनुसार जब गंगा आकाश से अवतीर्ण हुई तो दीर्घ-काल तक शिवजी के जटा-जूट में भ्रमण करती रही और उसके पश्चात् वह भूतल पर अवतरित हुई। यह एक रूपक है, जिसका वास्तविक रहस्य यह है कि जब शिव अर्थात् भगवान ऋषभदेव को असर्वज्ञदशा में जिस स्वंसवित्तिरूपी ज्ञान-गंगा की प्राप्ति हुई उसकी धारा दीर्घकाल तक उनके मस्तिष्क में प्रवाहित होती रही और उनके सर्वज्ञ होने के पश्चात् यही धारा उनकी दिव्य वाणी के मार्ग से प्रकट होकर संसार के उद्धार के लिये बाहर आई तथा इस प्रकार समस्त आर्यावर्त को पवित्र एवं आप्लावित कर दिया।

गंगावतरण जैन परम्परानुसार एक अन्य घटना का भी स्मारक है। वह यह है कि जैन भोगोलिक मान्यता में गंगानदी हिमवान् पर्वत के पद्मनामक सरोवर से निकलती है। वहां से निकलकर वह कुछ दूर तक तो ऊपर ही पूर्वदिशा की ओर बहती है, फिर दक्षिण की ओर मुड़कर जहां भूतल पर अवतीर्ण होती है, वहाँ पर नीचे गंगाकूट में एक विस्तृत चबूतरे पर आदि जिनेन्द्र वृषभनाथ की जटाजूट वाली अनेक वज्रमयी प्रतिमाएँ अवस्थित हैं, जिन पर हिमवान् पर्वत के ऊपर से गंगा की धारा गिरती है। विक्रम की चतुर्थ शताब्दी के महान् जैन आचार्य यतिवृषभ ने त्रिलोकप्रज्ञप्ति में[२] प्रस्तुत गंगावतरण का इस प्रकार वर्णन किया है :

**'आदिजिणप्पडिमाओ ताओ जढ-मउढ-सेहरिल्लाओ।**
**पडिमोवरिम्मि गंगा अभिसित्तुमणा व सा पढदि।'**

अर्थात् गंगाकूट के ऊपर जटारूप मुकुट से शोभित आदि जिनेन्द्र (वृषभनाथ भगवान्) की प्रतिमाएँ हैं। प्रतीत होता है कि उन प्रतिमाओं का अभिषेक करने की अभिलाषा से ही गंगा उनके ऊपर गिरती है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने भी प्रस्तुत गंगावतरण की घटना का निम्न प्रकार चित्रण किया है[३] :

---

१. कालमाधवीय नागर खण्ड।
२. त्रिलोकप्रज्ञप्ति : ४,२३०।
३. त्रिलोक सार : ५९०, गाथा संख्या।

'सिरिगिहसीसट्ठियंबुजकण्णियसिंहासणं जडामएलं।
जिणमभिसिक्षुमणा वा ओदिण्णा मत्थए गंगा।'

अर्थात् श्री देवी के गृह के शीर्ष पर स्थित कमल की कर्णिका के ऊपर सिंहासन पर विराजमान जो जटारूप मुकुट वाली जिनमूर्ति है, उसका अभिषेक करने के लिये ही मानों गंगा उस मूर्ति के मस्तक पर हिमवान् पर्वत से अवतीर्ण हुई है।

## त्रिशूल

वैदिक परम्परा में शिव को त्रिशूलधारी बतलाया गया है तथा त्रिशूलांकित शिवमूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। जैनपरम्परा में भी अर्हन्त की मूर्तियों को रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) के प्रतीकात्मक त्रिशूलांकित त्रिशूल से सम्पन्न दिखलाया गया है। आचार्य वीरसेन ने एक गाथा में त्रिशूलांकित अर्हन्तों को नमस्कार किया है।[१] सिन्धु उपत्यका से प्राप्त मुद्राओं पर भी कुछ ऐसे योगियों की मूर्तियाँ अंकित हैं, जिनके शिर पर त्रिशूल हैं और कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानावस्थित हैं, कुछ मूर्त्तियाँ वृषभचिह्न से अंकित हैं। मूर्तियों के ये दोनों रूप महान् योगी वृषभदेव से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त खण्डगिरि की जैन गुफाओं (ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी) में तथा मथुरा के कुशानकालीन जैन आयागपट्ट आदि में भी त्रिशूलचिह्न का उल्लेख मिलता है।[२] डा० रोठ ने इस त्रिशूल चिह्न तथा मोहनजोदड़ो की मुद्राओं पर अंकित त्रिशूल में आत्यन्तिक सादृश्य दिखलाया है।

## ब्राह्मी लिपि तथा माहेश्वर सूत्र

जैसी कि जैन मान्यता है तथा पहले हमने महापुराण की पाँचवीं संधि में देखा कि भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्र भरत आदि को सम्पूर्ण कलाओं में पारंगत किया और अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपिविद्या (अक्षर विद्या) तथा सुन्दरी को अंकविद्या सिखलाई। भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी लिपि है। जैन परम्परा में तथा उपनिषद् में भी भगवान् ऋषभदेव को आदि ब्रह्मा कहा गया है,[३] अतः ब्रह्मा

---

१. तिरयण-तिसूलधारिम ·····'धवलाटीका', १,४५-४६।

२. (a) Kurtshe, list of ancient mouuments protected under Act. VII of 1904 (Arch. Survey of India New imperial series vol 4)· Trisula in Anant gumpha P. 273 and in Trisula Gumpha P. 280.

(b) Smith Jain stupa and other Antiquities of Mathura Ayegapata teblets pls· IX, X and XI.

३. ब्रह्मा देवानां प्रथम संवभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनश्य गोप्ता।

···मुण्डकोपनिषद् : १, १।

से आई हुई लिपि ब्राह्मी कहलाई जा सकती है[१] तथा ब्राह्मी से सम्बन्धित लिपि का नाम भी ब्राह्मी हो सकता है।

दूसरी ओर पाणिनि ने अइउण् आदि सूत्रों (सूत्रबद्ध वर्णमाला) को 'माहेश्वर' बतलाया है[२] जिसका अर्थ है महेश्वर से आये हुए वैदिक परम्परा में जहाँ शिव को महेश्वर कहा गया है,[३] वहाँ जैन परम्परा में भगवान् ऋषभदेव ही महेश्वर अथवा ब्रह्मा (प्रजापति) हैं। इस प्रकार वृषभदेव द्वारा ब्राह्मी पुत्री को सिखाई गई ब्राह्मी-लिपि की अक्षर विद्या तथा माहेश्वर सूत्रबद्ध वर्णमाला दोनों में जहाँ स्वरूपतः ऐक्य है वहाँ यह ऐक्य ही दोनों के प्रवर्तक सम्बन्धी ऐक्य को इंगित करता है।

## वृषभ [बैल] का योग

वैदिक परम्परा में शिव का वाहन वृषभ (बैल) बतलाया गया है। जैन-मान्यतानुसार भगवान् वृषभदेव का चिह्न बैल है। गर्भ में अवतरित होने के समय इसकी माता मरुदेवी ने स्वप्न में एक वरिष्ठ वृषभ को अपने मुख-कमल में प्रवेश करते हुए देखा था, अतः इनका नाम वृषभ रक्खा गया। सिन्धु घाटी में प्राप्त वृषभांकित मूर्तियुक्त मुद्राएँ तथा वैदिक युक्तियाँ भी वृषभांकित वृषभदेव के अस्तित्व की समर्थक हैं। इस प्रकार वृषभ का योग भी शिव तथा वृषभदेव के ऐक्य को सम्पुष्ट करता है।

भगवान् वृषभदेव तथा शिव दोनों का जटाजूटयुक्त[४] तथा कपटी रूपचित्रण भी इनके ऐक्य का समर्थक हैं, भगवान् वृषभदेव के दीक्षा लेने के पश्चात् तथा आहार लेने के पूर्व एक वर्ष के साधक जीवन में उनके केश बहुत बढ़ गये,[५] फलतः उनके इस तपस्वी जीवन की स्मृति में ही जटाजूटयुक्त मूर्तियों का निर्माण प्रचलित हुआ।★

---

१. ब्राह्मण : आगता (ब्रह्मा से आई हुई) इस अर्थ में व्याकरणशास्त्र द्वारा ब्रह्म शब्द की निष्पति होती है।

२. इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि।—सिद्धांतकौमुदी, पृ० सं० २।

३. अथर्ववेदः १९, ४२, ४; १९, ४३, सूक्त, यजुर्वेद ४ ५८।

४. बत्तीसुबएस मुणीसरहं कुडिला उँचियकेसं।

—महापुराणु ३७, १७ तथा यजुर्वेद, १६, ५९।

५. संस्कारबिरहात् केशा 'जटीभूतास्तदा विभो',
नूनं तेऽपि तमःक्लेशमनुसोढुं तथा स्थिताः।
मुनेर्मूर्ध्निजटा दूरं प्रससुः पवनोद्धता',
ध्यानाग्निनेव तप्तस्य जीवस्वर्णस्य कालिका।

—आदिपुराणः १८,७५-७६।

# जैन रामकथा का स्वरुप व विकास

डा० शान्तिलाल खेमचन्द शाह

जैन रामकथा का आदि काव्य विमलसूरि का 'पउमचरिय' है, जिसकी रचना कवि के अनुसार महावीर निर्वाण के अनन्तर ५३० वर्षों में हुई है। यह महावीर निर्वाण का वर्ष ५३० याने ई० सं० पू० ४६७ आता है। परन्तु आज के विद्वानों की खोज के अनुसार उसकी रचना तीसरी या चौथी शताब्दी की मानी जाती है। यहां हम काल की दृष्टि से विचार न करते हुए यही कहना पर्याप्त समझते हैं कि विमलसूरि का "पउमचरिय" ही जैन रामकाव्य की सर्वप्रथम रचना है। जिस प्रकार बाल्मीकि की रचना जैनेतर रामकाव्य का आधार ग्रन्थ है उसी प्रकार परवर्ती रामकथा का मूलाधार ग्रंथ यही एक मात्र रचना है।

इस कथा का रूप एवं कथानक जैनेतर रामकथा से भिन्नत्व रखता है। जैनेतर रामकथाएँ रामको परमात्मस्वरूप में ग्रहण करती हैं तो जैन रामकथा राम को एक क्षत्रियकुलोत्पन्न महापुरुष के रूप में ग्रहण करती है। जैन संस्कृति के आदर्श के रूप में अपना आत्मविकास साधकर अन्त में मोक्ष के महाधाम में राम पहुँच जाते हैं। जैन रामकथा की पृष्ठभूमि, कथा पात्रों का चरित्र चित्रण सामाजिक एवं राजनीतिक तथा सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण आदि में भी अन्तर आ गया है। आदिकवि बाल्मीकि से संप्राप्त रूप से भिन्न लोककथा रूप जो दक्षिण भारत में प्रचलित रहा होगा अथवा जो भिन्नता उसमें रही होगी उसी को अपना आधार बनाकर जैन कवियों ने रामकथा की रचना की होगी। ऐसा कहा जा सकता है कि पउमचरिय की रचना का स्रोत विमलसूरि ने नामावली में बद्ध और आचार्य परम्परा से प्राप्त बतलाया है इसी को वे कहते हैं कि मैं इस प्रकार कथन करूँगा। १

जैन रामकथा का लक्ष्य समझ लेने पर हम जैन रामकथा काव्य का विकास किस प्रकार हुआ इसका एक संक्षिप्त दिग्दर्शन नीचे दे रहे हैं।

---

१. नामावलियबद्धं आयरिय परम्परागयं सव्वं वोच्छाभि पउमचरियं··· ।
विमलसूरि पउमचरियं १, ८ ।

## जैन परम्परा में रामकथा साहित्य

| | | |
|---|---|---|
| पउमचरियं — | विमल सूरि | ई० २ री-३ री शताब्दी |
| पद्मपुराण— | रविषेण | ७ वीं शताब्दी |
| वसुदेव हिण्डी — | संघदास गणि | ७ वीं ,, |
| उत्तर पुराण— | गुणभद्र | ८ वीं ,, |
| पउम चरिउ— | स्वयम्भू | ८ वीं ,, |
| धूर्ताख्यान— | हरिभद्रसूरि | ८ वीं ,, |
| चउपन्न पुरिसचरिउ— | शिलांकाचार्य | ९ वीं ,, |
| महापुराण— | पुष्पदन्त | १० वीं ,, |
| बृहत्कथाकोष— | हरिषेण | १० वीं ,, |
| पंप रामायण | नागदेव | ११ वीं ,, |
| कहावती— | भद्रेश्वर | ११ वीं ,, |
| त्रिषष्टि शलाका पुरुष | चामुण्डराय | ११ वीं ,, |
| धर्म परीक्षा | अमितगति | ११ वीं ,, |
| त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व-७ | हेमचन्द्र | १२ वीं ,, |
| योगशास्त्र | हेमचन्द्र | १२ वीं ,, |
| अंजना पवनंजय | — | १३ वीं ,, |
| जीवन सम्बोधन | — | १४ वीं ,, |
| पुण्णास्तव कहा | — | १४ वीं ,, |
| शत्रुंजय महात्म्य | धनेश्वर | १४ वीं ,, |
| रघु पद्मपुराण | — | १५ वीं ,, |
| रामचरित्र— | देव विजय | १६ वीं ,, |
| पुण्य चन्द्रोदय | कृष्णदास | १६ वीं ,, |
| रामचरित— | पद्मविजय | १६ वीं ,, |
| बलप्रद पुराण | रइधु | १६ वीं ,, |
| सीताराम चौपड़इ— | समय सुन्दर | १७ वीं ,, |
| पद्मचरित— | दौलतराम | १९ वीं ,, |
| जैन रामायण भाग १ से ७ | रामविजय सूरि | २० वीं ,, |
| जैन रामायणमां संस्कृतिनो आदर्श भाग १ से ७ | रामविजय सूरि | २० वीं ,, |

अन्यान्य भाषाओं में उपलब्ध जैन रामकथा साहित्य का ब्यौरा सूची के रूप में हमने अन्त में दे दिया है। अब हम हिन्दी जैन रामकथा का संक्षिप्त विवेचन यहाँ पर करेंगे।

## परवर्ती हिन्दी जैन रामकथा से सम्बन्धित साहित्य का संक्षिप्त परिचय

रामचरित [१]—रचयिता ब्रह्म जिनदास और इसका रचनाकाल वि. सं. १५०८ है।

पद्मचरित [२]—इसकी रचना विनयसमुद्र ने की है और ग्रन्थ वि. सं. १६०४ में बीकानेर में रचा गया है।

पिंगल ग्रन्थ [३]—जेसलमेर के महाराजकुमार हरराज के विनोदार्थ इसकी रचना कुशललाभ ने की है।

सीताराम चोपइ—कवि समय सुन्दर ने नवखण्डों में इस काव्य की रचना वि० सं० १६७३-८३ के बीच, लोकगीतों की ढालों के रूप में की है। वह विशेष महत्त्वपूर्ण रचना नहीं है।

रामयशोरसायन—विजयगच्छ के मुनि केशराज ने ४ खण्ड एवं पांच ढालों में इसकी रचना की।

रामचन्द्र चरित्र—लोंकागच्छीय त्रिविक्रम कवि ने वि० सं० १६९९ में इसकी रचना की है। यह ९ खण्डों में एवं १३५ ढालों की रचना है।

सीता चउपइ—खरतर गच्छ के सागरतिलक के शिष्य समय ध्वज ने इसकी रचना वि० सं० १६११ में की। ३२७ पद्यों की यह रचना है।

सीता चरित—पूर्णिमा-गच्छीय हेमरतन ने सात सर्गों में यह रचना की है। इसकी भाषा १७ वीं शती की प्रतीत होती है।

लघु-सीता सतु—यह रचना बारहमासा के ढंग पर सीता मन्दोदरी संवाद के रूप में रची गयी है। मन्दोदरी प्रत्येक ऋतु में सीता को रावण से भोग करने की प्रेरणा देती है जिसे अस्वीकार कर सीता अपने व्रत में अडिग रहती है। इसकी रचना पं० भगवतीदास ने की है तथा रचनाकाल वि० सं० १६८४ है।

रामसीता रास—गुणकीर्ति ने इसकी रचना की। यह जयपुर भंडार में सुरक्षित है।

रावण मंदोदरी—लावण्य मुनि की यह रचना सं० १५०० की है। यह रचना संवाद—पन्नालाल दिगंबर जैन सरस्वती भवन में (बम्बई) सुरक्षित है।

हनुमान चरित—सुन्दरदास ने सं० १६१६ में इसकी रचना की। दिल्ली के जैन पंचायती मन्दिर में यह सुरक्षित है।

सीता प्रबन्ध—रचना सं० १६२८। नाहरजी के संग्रह में कलकत्ता में सुरक्षित।

---

१. हस्तलिखित प्रति-डुंगरपुर (राजस्थान) दिगम्बर जैन मन्दिर के ग्रंथागार में।

२. हस्तलिखित प्रति-उदेपुर (राज.) गोडीजी ग्रन्थ भण्डार में मौजूद है।

३. राजस्थान शोध संस्थान जोधपुर से प्रकाशित।

सीता विरह लेख १—वि० सं० १६७१ में कवि करमचन्द ने इसकी रचना की है। यह अति छोटी रचना है जिसमें केवल ६१ पद हैं। सीता के द्वारा प्रेषित पत्र के रूप में सीता के विरह का बड़ा कारुण्यपूर्ण वर्णन इसमें किया गया है।

अंजनाचरित्र—भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य भुवनकीर्ति की यह रचना है।

अंजना सुन्दरी रास २—कवि महानन्द ने खण्डकाव्य के रूप में अंजना का कारुण्य पूर्ण जीवन इसमें चित्रित किया है।

अंजना रास—इसकी रचना कवि शान्ति कुशल ने वि० सं० १६६२ में की है।

अंजना सुन्दरी संवाद—कवि लुणसागर ने मिश्रबन्धुओं की से वि० सं० १६८९ में इसकी रचना की है।

हनुमान कथा— ब्रह्म राईमल्ल ने वि० सं० १६१६ में इसे प्रकाशित किया है।

हनुमान चरित्र ३—भट्टारक ललित कीर्ति के शिष्य ब्रह्मचारी देवीदास ने सं० १६८१ में राईसेन गढ़ में इसकी रचना की। इसमें २००० चौपाइयों में वर्णित हनुमान चरित्र मिलता है। ब्रज भाषा में रची गई यह रचना है।

हनुमत रास ४—भट्टारक श्री भूषण के शिष्य ब्रह्मज्ञान सागर की ब्रजभाषा में रची गई यह रचना है।

रामायण—खरतर गच्छीय विजयकुशल ने वि० सं० १७२१ में इसकी रचना की है। जैन कवि की यह रचना वाल्मीकि की रामकथा के आधार पर है।

पद्मपुराण कथा—इसके रचयिता खुशालचन्द काला हैं।

सीता चरित ५—रामचन्द्र बालक का यह सुन्दर महाकाव्य है। इसका रचना-काल वि० सं० १७१३ हैं।

सीता हरण ६—जयसागर की यह रचना गुजराती मिश्रित राजस्थानी में है। इसकी रचना वि० सं० १७३२ में अहमदाबाद के पास गन्धार नगर में हुई।

डालमंजरी रामरास—इसकी रचना तपागच्छीय सुज्ञानसागर ने वि० सं० १८८२ में की। यह रास हिन्दी प्रचुरा राजस्थानी में है और इसके ९ खण्ड हैं।

पद्मपुराण वचनिका—पं० दौलतराम ने वि० सं० १८८३ में इस ग्रन्थ की रचना की। आधुनिक खड़ी बोली का यह गद्य ग्रन्थ है इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्व है।

---

१. जैन श्वेताम्बर कान्फरन्स मुंबई संपादित, जैन गुर्जर कवियों—भा० १ पृ० ५०८, संवत १९८२।
२. हस्तलिखित प्रति—जैन सिद्धान्त भुवन, आगरा में।
३. शाहगढ़ (जि० सागर) जैन शास्त्र भण्डार में विद्यमान है।
४. हस्तलिखित प्रति-दिगम्बर जैन मन्दिर तेरापंथी शास्त्र भण्डार जयपुर में।
५. हस्तलिखित प्रति-१४४ पन्नों की आमेर (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार में है।
६. हस्तलिखित प्रति-१३३ पन्नों की आमेर शास्त्र भण्डार में विद्यमान।

रामचन्द्रचरित—यह रचना किसी वरधीचन्द की रचना है।

सीताचउपई १—तपागच्छीय चेतनविजय ने वि० सं० १९०३ में बंगाल के अंजीमगंज में इसकी रचना की।

रामरासो—ऋषि शिवलाल द्वारा बीकानेर में यह रचना वि० सं० १९०३ में लिखी गई है। यह रासो पद्धति पर रचित है।

इस प्रकार तीसरी शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक जैन रामकथा से सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य की जानकारी संक्षिप्त रूप में जानने का यथाशक्ति हमने यहाँ पर प्रयत्न किया है। इस साहित्य में उपलब्ध एवं उल्लेखनीय विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) इन कथाओं का आधार जैन रामकथा ही है जिसमें विमलसूरि का पउमचरियं यही आधारभूत ग्रन्थ है।

(२) दूसरी विशेषता इसकी कथावस्तु सम्बन्धी है। प्रायः इस साहित्य में उपेक्षित पात्रों की ओर लेखकों ने अपना सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उपेक्षिता उर्मिला की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया था। इसी प्रकार की रामकथा में एक प्रमुखपात्र हनुमान की माता अंजना का विशेष चित्रण इन जैन रामकथा लेखकों ने किया है। जैन कवियों ने परित्यक्ता अंजना का करुणरस से पुष्ट हृदयद्रावक चित्र अभिव्यंजित किया है जो हमें जायसी की नागमती की याद दिलाता है।

अंजना सुन्दरी रास में तिरस्कृता अंजना का यह चित्र दृष्टव्य है—

"वेन दयाल कइ करी दूधनी दूध भरी रे।
एणी संसारी अभागिण एकं ति हुँ करी रे।
स्यो अपराध कारयामिनी वरता हरोरे।
हा। जियनबम्भा पा सो पापीय माहरोरे ।।३७३

पति के उन कठोर वचनों से उसे कैसा आघात लगा है? पति से ही गर्भधारणा होने पर भी अंजना को कलंक लगाया गया। वह अपने पूर्वपापों पर पश्चात्ताप कर रही है। उसकी इस अतिदयनीय दशा को सूरज भी नहीं देख सका। यथा—

अति दुख देषी तेहउ, जाणि रहि न सकंत।
दिनकर पणिते आथम्मु तिमि रात थण पसरंत ।। २

लघु सीता सतु में भी पं० भगवतीदास ने सती सीता की दृढ़ता का आकर्षक चित्र खींचा है। इसमें सीता मन्दोदरी का वार्तालाप है। मन्दोदरी

---

१. हस्तलिखित प्रति-अजीमगंज में जयचन्दजी के भण्डार में विद्यमान है।

२. उसका आत्यन्तिक दुख देखकर सूरज अपने अस्तित्व को भूल गया और इसी को प्रकट करने के लिए मानो वह अस्ताचलगामी हो गया और रात्री का अन्धकार फैल गया।—अंजना सु० रास महानन्द गाथा २७५, १७ वीं शती।

सीता को रावण को स्वीकार करने के लिए साग्रह प्रलोभन देती है और सीता अपने व्रत पर अटल रहकर रावण के साथ भोग भोगने से इन्कार करती है।

मन्दोदरी ने कहा—

"जब लगी हंस शरीरमाहि। तब लगी कीजिह भोगु।
राजत जहि भीक्षा भमहिं। इव भूला संब लोगु॥ १

सीता ने दृढ़ता से प्रत्युत्तर किया—

"शुक नासिक, मृग दृग, पिकवइनि, जानकि वचन लवइ सुखरइनि।
अपना पियपइ अमृत जानी, अवरपुरुष रविदग्ध समानी।
पिय चितवनि चितु रहइ आनन्दा पियगुनसरत बढत रस कन्दा
प्रीतम प्रेम रहइ मनपूरी, तिनु बालिमु संगु नहिं दूरी॥
सुख चाहइ ते बावरी, परपति संग रति मानी।
जिउ कपि शीत विथा मरइ, तापस गुंजा आनी
तृष्णा तो न बुझाइ, जलु जब खारी पीजिए
मिरगु मरह छपि धाइ, जल धोखइ थल रेतइ॥ २

सीता की दृढ़ता का यह चित्रण बड़ा ही सुदृढ़ एवं आदरणीय लगता है।

(३). जैन हिन्दी परवर्ती साहित्य की तीसरी विशेषता हनुमान के विस्तृत चरित्र चित्रण सम्बन्धी है।

---

१. शरीर में प्राण है तब तक सशरीर उपभोग कर आनन्द ले। भीख माँगने-वाला भटकता रहता है और योग्य मार्ग भूल जाता है। वैसे ही तुम्हारे शरीर में जब तक प्राण हैं तब तक उपभोग कर लो। अन्यथा तुम भी भटकती रहोगी। —सीतासतु-पं० भगवतीदास, गा० ३०३,१७ वीं शती

२. शुक के समान जिसकी नासिका है, कोयल के समान वचन है, ऐसी मृगाक्षी सीता बोली-अपने पति को अमृत के समान जान और परपुरुष को जलानेवाले सूरज के समान समझ।

प्रिय हमेशा आँखों के सामने रहते हैं इससे प्रिय के गुण यशस्कन्ध के समान बढ़ते ही जाते हैं। प्रियतम का प्रेम चित्त में दृढ़ होता है। इसलिए वह अपने से दूर नहीं है।

जो मूर्ख स्त्री परपुरुष को पति मानकर चाहती है वह शीत में नाहक मरने वाले कपि के समान अथवा गुंजाफल प्राप्त होने पर भी वृथा मरने वाले तपस्वी के समान है।

जिस प्रकार सारे जल से प्यास नहीं बुझती और जिस तरह रेत में मृगजल को पानी समझकर मृगतृष्णा तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार परपुरुष के संग से कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता।

—लघुसीतासतु-पं० भगवतीदास गाथा ३०३ से ३०४ वि० सं० १६८४।

यह आश्चर्य की बात है कि जो हनुमान राम के सखा एवं आदर्श के रूप में परमपूजनीय माने जाते रहे हैं उनके प्रबल व्यक्तित्व का सम्पूर्ण चित्र केवल जैन रामकथा में ही चित्रित हुआ है जब कि जैनेतर साहित्य में राम का कार्य सम्पन्न करने वाले अनन्य सेवक के रूप में ही वे चित्रित हुए हैं।

रामकथा के विशाल एवं सुविस्तृत जैन साहित्य को देखते हुए उसका सांगोपांग, वर्णन करना इस प्रबन्ध के लिए असम्भव होगा इसलिए सुविस्तृत जैन साहित्य में से केवल प्रातिनिधिक चार जैन रामकथाएँ ही ली हैं।

ये चार जैन रामकथाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) पउमचरियं-विमलसूरि रचनाकाल ईसवी की ३ री शताब्दी

(२) पउमचरिउ-स्वयम्भू रचनाकाल ईसवी ८ वीं शताब्दी

(३) उत्तर पुराण–गुणभद्र रचनाकाल ईसवी ७-८ वीं शताब्दी

(४) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र वर्ष ७वाँ-हेमचन्द्र ईसवी की १२ वीं शताब्दी।

इनमें से विलमसूरि का पउमचरियं प्राकृत भाषा की रचना है। स्वयम्भू ने पउमचरिउ की रचना अपभ्रंश भाषा में की है। उत्तर पुराण और त्रिषष्टि-शलाका पुरुषचरित्र पर्व ७ संस्कृत भाषा की रचना है।

पउमचरियं तथा पउमचरिउ प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ है जिन्हें हिन्दी के साहित्यकारों ने हिन्दी के आदिकाल की रचनाओं के रूप में अपनी स्वीकृति प्रदान की है। हिन्दी भाषा का यह कदाचित पूर्वरूप ही है, इस दृष्टि से उनका सांगोपांग अध्ययन एवं अनुशीलन करना अनुचित नहीं होगा। त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व ७ तथा उत्तर पुराण ये दोनों ग्रन्थ संस्कृत में सरल एवं सुबोध भाषा में लिखे गये हैं। जैन रामकथा की कथावस्तु की दृष्टि से ये दोनों ग्रंथ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव इस दृष्टि से इनका अनुशीलन करना भी योग्य ही होगा।

## चारों प्रातिनिधिक जैन रामकथाओं के लेखकों का संक्षिप्त परिचय

जिन कृतियों को हमने अनुशीलन के लिए चुना है उनके कर्ताओं का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। इनमें प्रथम जैन रामकथा लेखक विमलसूरि हैं।

### १. विमलसूरि

प्राकृत के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वैदिक परम्परा में संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदि कवि का है वही स्थान प्राकृत साहित्य में विमलसूरि का है।

अपनी अमृतमयी और सुरस प्राकृत भाषा से विमलसूरि ने जो कीर्ति प्राप्त की है उसे शायद ही कोई पा सकेगा।

रचनाकाल—विमलसूरि की इस रचना के काल के विषय में मतभेद है। विमलसूरि ने अपनी रचना में जो मत प्रकट किया है उसके अनुसार इस ग्रन्थ का रचनाकाल वीर संवत् ५३० अर्थात् पहली शताब्दी है।[१] डॉ० हर्मन जेकोबी के अनुसार यह रचना काल ईसवी की तीसरी शताब्दी है।[२] जिनविजयजी भी तीसरी शताब्दी मानते हैं। मुनि कल्याणविजयजी तथा डा० वी० एम० कुलकर्णी भी इसी मत के हैं।[३] परन्तु डॉ० चन्द्र ने वह काल ४७३ ई० का बताया है।[४] हमारा मत है कि विमलसूरि नाइल कुल के बतलाये गये हैं, नाइल कुल, नाइली साहा, नाइलगच्छ और नागेन्द्र कुल सब समान अर्थ प्रकट करते हैं। उस कुल का काल तीसरी शताब्दी होने से ग्रन्थ रचना का काल तीसरी शताब्दी है। पं० लालचन्द गांधी ने भी इसी मत का समर्थन किया है।[५]

## विमलसूरि का परिचय

अन्तर्साक्ष्य से हम उनके बारे में जानते हैं। वे नाईल कुल वंश विभूषण विजय के शिष्य थे तथा राहू के प्रशिष्य थे। उन्होंने अपने विरोधियों के दर्शनों का भी गहरा अध्ययन किया था।[६] विमलसूरि ने पूर्वों के[७] अनुसार नारायणों तथा बलदेवों का चरित्र सुनकर राघवचरित्र लिखा। जिन्होंने हरिवंश चरिय की भी रचना की थी पर आज वह रचना अप्राप्य है।

---

१. पंचेव या वाससया, दुसमाए तीसवरी ससंजुता।
वीरे सिद्धिमुवगए, तओ निबद्धं इमं चरियं।। ११८/१०३ प० च० वि०

२. मॉडर्न रिव्ह्यू-दिसम्बर १९१४।

३. पउमचरियं वि० प्रस्तावना पृ० १० भाग १, १९६२ ई०

४. जर्नल ऑफ द ओ इ बडोदा, जून १९६४, डॉ० चन्द्र।

५. जैनयुग खण्ड १ भाग २, पृ० ६८-६९, पं० लालचन्द गांधी, १९८१

६. राहू नामायरिओ ससमय परसमयगहिय सब्भावो।
विजओ य तस्स सीसो नाइल कुल वंस नन्दियरो।।८/११७
सीसेण तस्सरइयं राहवचरियं तु सूरिविमलेणं।
सोऊण पुव्वगये नारायण—सीरिचरियाहूँ।।८/११८
प० च० वि० ८/११७-११८।

७. भगवान महावीर का ज्ञान १२ अंगों में गणधरों के द्वारा रचा गया है। उनमें १२वें अंग दृष्टिवाद सूत्र के अन्तर्गत १४ पूर्व ग्रन्थ थे। जिनमें विभिन्न विषयों का ज्ञान था। आज वह लुप्तप्राय है।

पउमचरियं के अनुसार वे श्वेताम्बर तथा दिगंबर दोनों जैन सम्प्रदायों की मान्यताएँ प्रकट करते हैं। इससे यह सूचित होता है कि वे दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो पंथों में जैन सम्प्रदाय का विभाजन हुआ उसके पूर्वकाल में थे पर उनका नागिल या नागेन्द्रगच्छ श्वेताम्बर सम्प्रदाय का प्रभाव सूचित करता है।

## २. चतमुंख स्वयम्भू

द्वितीय रामकथा के लेखक चतमुंख स्वयम्भू हैं। कर्णाटक के एक साहित्यिक घराने में ये पैदा हुए। इनकी माता का नाम पद्मिनी और पिता का नाम मारुतदेव था। तीन पीढ़ियों से इस घराने में साहित्य साधना की परम्परा चली जा रही थी। कवि स्वयम्भू ने दो विवाह किये। इनकी पत्नियां पढ़ी लिखी ही नहीं पर पति की साहित्य साधना में सहायक भी थी। कवि के कई पुत्र तथा शिष्य थे। उनमें त्रिभुवन प्रमुख था उसने पिता से साहित्य परम्परा पायी। धनंजय और धवल के आश्रय में उन्होंने पउमचरिउ, अरिट्टनेमिचरिउ और स्वयम्भू छन्द की रचना की। वे स्वयं विद्वान् थे और जीवनकाल में ही उन्होंने यश और कीर्ति पाई थी। कविराज चक्रवर्ति, छन्दश्चूडामणि आदि उनकी उपाधियाँ थीं। छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्यशास्त्र तथा व्याकरणशास्त्र के वे वेत्ता थे। स्वयम्भू का काल प्राय: आठवीं शताब्दी है। उनके तीनों ग्रन्थ अधूरे रहे थे जिनको उनके पश्चात् त्रिभुवन स्वयम्भू ने पूर्ण किया। प्रबन्ध कौशल तथा प्रकृति चित्रण में वे सिद्धहस्त थे।

स्वयम्भू लोकभाषा के कवि थे। अपने ग्रंथ को वे रड्डा छन्दोबद्ध रचना कहते थे। उनका जलक्रीड़ावर्णन द्रष्टव्य है।

## ३. आचार्य हेमचन्द्र सूरि

तृतीय जैन रामकथा के लेखक आचार्य हेमचन्द्र सूरि हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरि का त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र संस्कृत रचना है। अणहिल पुर-पाटण के चालुक्य वंशीय राजा सिद्धराज शैव थे फिर भी उन्होंने अपने दरबार में आचार्य हेमचन्द्र सूरि का बड़ा आदर किया था। राजा सिद्धराज की अभिलाषा थी कि वह विद्वद्प्रेमी और विद्या के आश्रयदाता राजा भोज के समकक्ष बने। इसलिये उन्होंने काश्मीर तथा अन्य देशों से विभिन्न ग्रन्थों की सामग्री आचार्य को उपलब्ध करा दी। संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, कोष, काव्य, काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र आदि की रचना करके हेमचन्द्र ने अणहिल पुरपाटण को राजा भोज की धारा-

नगरी बना दिया। हेमचन्द्र के प्रभाव के कारण पाटण बरसों तक प्रसिद्ध विद्या-धाम और अहिंसा धर्म का आश्रयस्थान बना।

सिद्धराज के पश्चात् उनका भतीजा राजा कुमारपाल हेमचन्द्र सूरि का शिष्य एवं श्रावक बना। हेमचन्द्र सूरि ने संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

डॉ० बी० एम्० कुलकर्णी जी हेमचन्द्र सूरि के बारे में इस प्रकार लिखते हैं—"संस्कृत साहित्य में उनका ऊँचा सम्माननीय स्थान है। संस्कृत एवं प्राकृत के व्याकरणकार, शब्दकोशकार, काव्यशास्त्र और छन्दशास्त्र के रचयिता के रूप में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उनका बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। उनके विद्वतापूर्ण ग्रन्थ मौलिक नहीं होने पर भी उनकी विश्वकोषात्मक अतिव्यापक विस्तृत परम्परा का दर्शन इनके ग्रन्थों में होता है। सर्व क्षेत्रों की विस्मयकारी उपलब्धियों के कारण उनके सहधर्मियों ने उन्हें "कलिकालसर्वज्ञ" की उपाधि प्रदान की। आचार्य हेमचन्द्र कवि से भी अधिक प्रकाण्ड विद्वान, नीतिशास्त्रज्ञ, सफल उपदेशक राजनीतिज्ञ तथा महायोगी थे।"१

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि हेमचन्द्र सूरि ने अपने को एकसाथ सफल कवि, इतिहासकार, व्याकरणकार एवं विश्वकोशकार की परम्परा में एक विद्वान के रूप में प्रमाणित किया है।

श्री हेमचन्द्राचार्य की एक और विशेषता है उनकी समन्वयवादिता एवं हृदय की उदारता। श्रेष्ठ जैनाचार्य होने पर भी वे राजा सिद्धराज के साथ सोमनाथ के दर्शन के लिये गये थे। सोमनाथ को हाथ जोड़ते हुए उन्होंने स्तुति की है "जनम के बीजांकुरों की निर्मित करनेवाले रागादि विकारों का जिन्होंने

---

१. He has a place of honour in general Sanskrit Literature as a compiler of useful and important works on grammar, lexicography, poetics and metrics. His learned books are not distinguished by any originality, they rather display a truely encyclopedia tradition and an enormous amount of reading, besides a practical sense which marks them very useful account of astounding many sideness of his literacy achievements. He earned from his coreligionists the title of Kalikal Sarvadnya.

Dr. V. M. Kulkarni—Ram Story in jain Literature 1962 (Manuscript) Page-415

निमूलन किया है उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जिन आदि चाहे जिस नाम से जानिए। मैं उन्हें नमस्कार करता हूं।१

"त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र" उनकी रचनाओं में सबसे विस्तृत एवं प्रसिद्ध रचना है, जिसके सातवें पर्व के रूप में जैन रामकथा है। इस रामकथा में भी जैन और अ-जैन रामकथा का कुछ समन्वय है, फिर भी उसमें उन्होंने अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है।

(४) चौथी रामकथा के रचयिता आचार्य जिनसेन के शिष्य गुणभद्र हैं। गुणभद्र कर्णाटक के निवासी थे। अपने गुरु के द्वारा रचित आदि पुराण में १६२० श्लोकों की रचना कर उन्होंने उसको पूर्ण किया और १११७ श्लोकों का उत्तर पुराण रचकर रामचरित्र गूंथा।

इनकी रामकथा की यह विशेषता है कि वह विमल सूरि की जैन रामकथा और बाल्मीकि की जैनेतर रामकथा से भी भिन्न है। वाल्मीकि ने सीता को आयोनिजा बताया है, विमलसूरि ने उसका जन्म जनक राजा के विदेहा रानी से बताया है। तो गुणभद्र सीता को रावण की मन्दोदरी से प्राप्त पुत्री के रूप में मानते हैं। उनकी रचना का आधार अज्ञात है फिर भी वे विमलसूरि तथा संघदासगणि की रचनाओं से परिचित थे। यह कथा शायद किसी "परमेश्वर" की मद्यकथा से ली गई होगी जिसका उल्लेख जिनसेन ने अपने आदि पुराण में किया है। सीता का रावणपुत्री का रूप तिब्बती रामायण में भी मिलता है। इससे इस मान्यता को बल प्राप्त होता है कि सम्भवतः यह किसी रामविषयक लोककथा का रूप रहा होगा। इसपर श्री नाथूराम प्रेमीजी का तर्क है कि—"हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से बहुत पहले विमलसूरि ही के समान किसी अन्य आचार्य ने भी जैनधर्म के अनुकूल, सोपपत्तिक और विश्वसनीय एवं स्वतन्त्र रूप से रामकथा लिखी होगी और वह गुणभद्र को गुरुपरम्परा से प्राप्त हुई होगी।२

क्रमशः

---

१. भव-बीजांकुर-जनना रागद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तमै।।—हेमचन्द्र,

वीतरागस्तोत्र।

२. पं० नाथुराम प्रेमी-जैन साहित्य और इतिहास, पृ-२८२ सं० १९९९

# जैन धर्म एक व्याख्या

लेखक : गणि श्री सुशील विजय जी

जैन धर्म एक गुणनिष्पन्न धर्म है। उसके दो भाग हैं 'जैन' और 'धर्म'। प्रथम जि ( जि ) जि ( जि ) आभिभवे, To conquer जीतना। इसमें रही 'जि' घातु पर से उणादिका 'न' प्रत्यय लगाने से 'जिन' शब्द बना है, जो व्यक्ति वाचक नहीं। ऐसे गुण वाचक शब्द जिनकी व्युत्पत्ति इस तरह है—"रागाद्यन्तर-रिपून् जयतीति जिन:" राग द्वेषादि अभ्यंतर ( आंतरिक ) अरियों पर विजय प्राप्त करने वाला—शत्रुओं को जीतने वाला 'जिन' कहलाता है। दूसरा धृङ ( धृ ) धारणे ( To hold ) धारण करना। इस धातु पर से उणादिका 'म' प्रत्यय लगने से गुण में परिवर्तित हो धर्म शब्द बना है। उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—"दुर्गतौ प्रपतज्जन्तूत् धारणाद् धर्म उच्चते" दुर्गति की गहरी खाई में गिरते प्राणी मात्र को बचाने वाला होने से धर्म कहलाता है।

"जिनेन प्रोक्त :—जैन: जैनश्चासौ धर्मश्चजैन धर्म:" जिन द्वारा कथित हो वह जैन कहलाता है और जैन ऐसा जो धर्म वह जैन धर्म। अथवा जिनो देवता यस्य स जैनः अर्थात जिन है देवता जिसके वह जैन व्युत्पत्ति के अनुसार इस धर्म अनुयायी विश्व में "जैन" जातिवाचक शब्द से पहचाने जाते हैं।

जैन दर्शन अलग-अलग सात नयों[1] के सर्वोत्कृष्ट संग्रह से सुशोभित है जबकि अन्य दर्शन केवल एकेक नय का आश्रय लेकर ही प्रवृत्त हुए हैं। न्याय-विशारद महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजय जी महाराज आध्यात्मसार नामक छठे प्रबन्ध के आगम स्तुति अधिकार में कहते हैं कि—

"बौद्धा नामृजुसूत्र तो मतमभूद्
वेदान्तिना सङ्ग्रहात्
साङ्ख्यानाँ तत एव नैगमनयाद्
योगश्च वैशेषिक:।
शब्द ब्रह्म विदोऽपि शब्द नयत:
सर्वैर्नयैर्गुम्फिता,
जैनी दृष्टिरितीह सारसरता
प्रत्यक्ष मुद्वीक्षते ।। २०२ ।।"

---

[1] नैगम, संग्रह व्यवहार, ऋजुसूत्र, समाभिरूढ़ शब्द और एवंभूत

( क्षणिकवादी वर्तमान वस्तु को मानने वाले सुगत के वंशज ) बौद्धों का दर्शन ऋजुसूत्र नय से जन्मा है। ( अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाले ) वेदांतियों का मत संग्रह नय में से उत्पन्न हुआ है। ( आत्मा को अकर्त्ता मानने वाले ) सांख्यों के मत की भी वही परिस्थिति है। ( सामान्य और विशिष्ट को सर्वथा अलग मानने वाले गौतम और कणाद के अनुयायी ) नैयायिक और वैशेषिकों का मत भी नैगमनय से निकला है। ( शब्द को ही ब्रह्म मानने वाले ) मीमांसकों का मत शब्द नय से पैदा हुआ है। किन्तु जैन दर्शन उपयोक्त सभी नयों के संग्रह से पूर्ण है।

जैन दर्शन विश्व की सभी वस्तुओं को द्रव्यास्तिक नय की अपेक्षा से नित्य मानता है। और पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा से अनित्य। जैन दर्शन की सूक्ष्म से सूक्ष्म कर्म-पद्धति (Karmic Theory) सूक्ष्मतम तत्वज्ञान (Philosophy) नव तत्वों[1] का सुन्दर स्वरूप, अनुयोगों[2] का अनुपम निरूपण, निक्षेपापों[3] का रम्य वर्णन, सप्तभंगी[4] और सप्त नयो का सत्य स्वरूप स्यद्वाद—अनेकान्त वाद की विशिष्टता, अहिंसा की पराकाष्ठा, तप की अलौकिकता योग की बेजोड़ साधना और व्रतों महाव्रतों का सूक्ष्म रीति सेपरिपालन आदि बातों तक अपनी गति में ले जाने में जैन दर्शन ही समर्थ रहा है।

---

१. तत्व-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

२. अनुयोग—बंदा द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण करणानुयोग और धर्म कथानुयोग।

३. निक्षेप—नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप।

४. सप्तभंगी—१. 'स्याद् अस्ति एव' २. 'स्याद् नास्ति एव' ३. 'स्याद अस्ति नास्ति एव' ४. 'स्याद् अस्ति अव्यक्तव्य एव' ५. 'स्याद् नास्ति अव्यकतव्य एव' ६. 'स्याद अव्यक्तव्य एव' ७. 'स्याद् आस्ति नास्ति अव्यक्तव्य एव।

# त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

लेखक—हेमचन्द्राचार्य

अनुवाद—राजकुमारी बेगानी

( पूर्वानुवृत्ति )

उस दृश्य को देखकर वसुदेव भी उस मयूर के पीछे दौड़े किन्तु वह तत्काल अदृश्य हो गया। तब वे रात्रि निवास के लिये स्थान खोजते-खोजते इधर उधर देखने लगे। निकट ही उन्होंने एक गोव्रज देखा। गोप बालाओं द्वारा सम्मानित होकर उन्होंने वह रात वहीं व्यतीत की और प्रभात होने के पूर्व ही दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद वे गिरिवट नामक एक गाँव में आये। वहाँ उन्होंने सर्वत्र वेद-ध्वनि सुनी। एक ब्राह्मण को इसका कारण पूछने पर उसने बताया—

राजा रावण के समय दिवाकर नामक एक विद्याधर ने अपनी सुन्दरी नामक कन्या नारद को दान में दी। उसी वंश के सूरदेव नामक ब्राह्मण अभी यहाँ के प्रमुख हैं उनकी क्षत्रिया नामक पत्नी के गर्भ से सोमश्री नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। वह कन्या वेदों में पारंगत हो गयी। सूरदेव ने एक नैमित्तिक से पूछा कि उसकी कन्या का विवाह किसके साथ होगा, तव उसने बताया कि जो इसे वेद विद्या में परास्त करेगा वही इसका पति होगा। उसे परास्त करने के लिये ये ब्राह्मणगण निरन्तर वेदाभ्यास में निरत हैं। इनके गुरु हैं ब्रह्मदत्त। यह सुनकर वसुदेव ब्राह्मण का रूप बनाकर ब्रह्मदेव के पास गए और बोले मैं आपसे वेदाध्ययन करना चाहता हूँ। उनके सम्मत होने पर वसुदेव उनसे वेदाध्ययन करने लगे और बाद में सोमश्री को परास्त कर उससे विवाह कर लिया।

उसके साथ यौवन सुख भोग करते हुए वसुदेव वहीं रहने लगे। तदुपरान्त एक दिन वे उद्यान में गये वहाँ उन्होंने इन्द्रदर्शन नामक एक इन्द्रजालिक को देखा उसके इन्द्रजाल का चमत्कार देखकर वसुदेव ने उनसे वह विद्या सीखनी चाही। वह बोला मन को चमत्कृत करने वाली यह विद्या सीखने योग्य है। संध्या समय इस विद्या की आराधना करने पर यह पूर्ण होती है किन्तु सूर्योदय होने पर विभिन्न संकटों के सम्मुखीन होना पड़ता है। यदि आपका कोई मित्र हो तो उसे बुलालें। वसुदेव ने जवाब दिया—'मैं तो विदेशी हूं, मेरा कोई मित्र नहीं है।

यह सुनकर वह बोला—'हे भाई तब मैं ही तुम्हारा मित्र और भाई हूँ—मेरी पत्नी वनमाला भी तुम्हारी सहायता करेगी।

तत्पश्चात् संध्या के समय वसुदेव ने यह मन्त्र ग्रहण किया और जाप करने लगे। और वह इन्द्रजालिक उन्हें एक पालकी पर बैठाकर उड़ाकर ले जाने लगा सुबह सूर्योदय के समय जाप करने से संकट आयेगा—ऐसा सोचकर वसुदेव ने जैसे ही नेत्र खोले इन्द्रजालिक की छलना उनकी समझ में आ गयी। वे पालकी से कूदकर एक ओर दौड़ने लगे। इन्द्रदर्शन भी उनके पीछे पीछे दौड़ने लगा किन्तु अन्ततः उसे पीछे छोड़कर वसुदेव संध्या समय तृणशोषक नामक एक गाँव में पहुँच गये वहाँ रात्रि के समय जब वे एक देवालय में सोए हुए थे तभी सहसा एक राक्षस आया और उन्हें घूँसे मारने लगा। इस पर वसुदेव को भी उस पर प्रति आक्रमण करना पड़ा। बहुत देर तक उसके साथ लड़ाई करने के बाद वसुदेव ने बकरे को जैसे रस्सी से बांधा जाता है उसी प्रकार उसको कपड़े से बाँध डाला। फिर धोबी जैसे शिला पर कपड़ा पछाड़ता है उसी प्रकार जमीन पर पछाड़-पछाड़ कर मार डाला।

सुबह वहाँ के अधिवासियों ने मृत राक्षस को देखा इससे वे प्रसन्न होकर वसुदेव को रथ में बैठाकर गाजे बाजे के साथ जैसे वर को ले जाया जाता है उसी प्रकार एक गृह में ले गए और वहाँ उन्हें पाँच सौ कन्याएँ दीं। किन्तु वसुदेव ने उन्हें ग्रहण नहीं करके पूछा—यह राक्षस कौन है? तब उनमें से एक ने कहा :—

कलिंग देश में श्री कांचनपुर नामक एक नगर है। वहाँ एक पराक्रमी राजा थे उनका नाम था जितशत्रु। यह राक्षस उनका सौदास नामक पुत्र था। सौदास अत्यन्त माँस लोलुप था। किन्तु राजा ने अपने राज्य में आमारी घोषणा करवा रखी थी किन्तु पुत्र के आग्रह पर इच्छा न रहते हुए भी उसे एक मयूर का मांस खाने की अनुमति दे दी। रसोइये प्रतिदिन वंश पर्वत से एक मयूर पकड़ कर लाते और उसका मांस उसे खाने को देते। किन्तु एक दिन उस मयूर का मांस एक बिल्ली खा गई। रसोइये ने तब एक मृत बालक का मांस पकाकर उसे खाने को दिया। वह माँस खाने के बाद उसने रसोइये से पूछा यह स्वादिष्ट मांस किसका है? उसने तब सारी सत्य बात बता दी। तब सौदास बोला—अब से एक मयूर के बदले एक बालक का मांस मुझे खाने को देना। यह आज्ञा देकर ही वह रुका नहीं—वह स्वयं भी नगर के बालकों को पकड़-पकड़ कर लाने लगा। जब राजा ने यह बात सुनी तब उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे राज्य से बाहर निकाल दिया। पिता के भय से वहां से भागकर वह यहाँ एक दुर्गम स्थान में रहने लगा और प्रतिदिन पाँच-छः लोगों को मारकर उनका मांस खाता है। आपने उस राक्षस को मारकर बहुत अच्छा कार्य किया है और हम सबको बचा लिया है।

यह सुनकर बसुदेव बहुत आनन्दित हुए और उन पाँच सौ कन्याओं के साथ विवाह कर लिया। उस रात्रि वे वहीं रहे। दूसरे दिन सुबह उठकर अचल ग्राम गये वहाँ उन्होंने एक सार्थवाह की कन्या मितश्री के साथ विवाह किया क्योंकि किसी नैमित्तिक ने उसे बताया था कि उसका विवाह वसुदेव के साथ होगा।

वहाँ से वेदसाम नगर की ओर जाते हुए राह में उन्हें वनमालिका (इन्द्रजालिक की पत्नी) मिली। उन्हें पहचानते ही वह 'आओ देवर आओ' कहती हुई अपने घर ले गई। वहाँ उसने अपने पिता से कहा—'ये वसुदेव हैं' तब उसके पिता ने 'आप कैसे हैं' आदि शिष्टाचार के पश्चात कहा—

'यहाँ के राजा का नाम कपिल है उनके कपिला नामक एक कन्या है। एक नैमित्तिक ने राजा से कहा था कि वसुदेव कुमार के साथ कपिला का विवाह होगा जो कि अभी गिरीतट पर निवास कर रहे हैं वे स्फुलिंग नामक अश्व का दमन करेंगे यह उनकी पहचान होगी। मेरे जँवाई इन्द्रजालिक इन्द्रशमन को राजा ने ही तुम्हें यहाँ लाने के लिये भेजा था किन्तु उन्होंने इसी बीच आकर बताया कि तुम बीच राह से ही न जाने कहाँ खो गए। सौभाग्यवश अब तुम लौट आये हो। अब राजा के अश्व का दमन करो। यह सुनकर वसुदेव ने राजा के अश्व का दमन किया और कपिला के साथ विवाह किया। राजा और कपिला के भाई अंशुमत द्वारा सम्बन्धित होते हुए वसुदेव वहीं निवास करने लगे। क्रमशः उनके एक पुत्र हुआ।

एक दिन वसुदेव एक हाथी को पकड़ने गये। उसे पकड़ कर जैसे ही उस पर चढ़ने लगे वह उन्हे लेकर आकाश मार्ग से उड़ चला। तब उन्होंने उसे एक घूँसा मारा। घूँसा खाते ही वह हाथी एक सरोवर के तट पर जा गिरा और विद्याधर नीलकण्ठ बन गया। यह वही विद्याधर था जो कि नीलयशा के साथ विवाह करने के समय उनसे युद्ध करने आया था।

वहाँ से बसुदेव सालगूह नामक नगर में गए। वहाँ उन्होंने राजा भाग्यसेन को धनुर्विद्या का प्रशिक्षण दिया। भाग्यसेन का अग्रज मेघसेन उनसे युद्ध करने आया—पराक्रमी वसुदेव ने उसे युद्ध में परास्त कर दिया। इससे सन्तुष्ट होकर भाग्यसेन ने पद्मसी सुन्दर अपनी रूपसी कन्या पद्मावती का उनके साथ विवाह करा दिया। राजा मेघसेन ने भी अपनी कन्या अश्वसेना उन्हें ब्याह दी। पद्मावती और अश्वसेना के साथ कुछ दिन सुख पूर्वक वहाँ रहकर वे भद्दिलपुर गए।

वहाँ उन्होंने राजा पुण्ड्र की कन्या पुण्ड्रा को देखा। राजा पुण्ड्र की मृत्यु के पश्चात् वह वहाँ राज्य कर रही थी। शैशव में उसे एक औषधि के द्वारा पुरुष रूप में रूपान्तर किया गया था। वसुदेव उसे देखने मात्र से ही समझ गये

कि यह पुरुष नहीं नारी है। उसके प्रति प्रेमभाव उदित होने पर उन्होंने उससे विवाह कर लिया। वहाँ उनके पौण्ड्र नामक एक पुत्र हुआ। बाद में वही वहाँ का राजा बना।

विद्याधर अंगारक ने एक दिन रात में हँस का रूप धारण कर वसुदेव को उठाकर गंगा में फेंक दिया। वसुदेव तैरकर किनारे आये और सुबह के समय इलावर्द्धन नगर में गए। वहाँ एक सार्थवाह के आह्वान पर उसकी दुकान पर जाकर बैठ गए। उनके प्रभाव से सार्थवाह ने तत्क्षण एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त की। इस लाभ के कारण सार्थवाह उन्हें स्वर्ण रथ में बैठाकर अपने घर ले गया और स्वकन्या सोमश्री के साथ उनका विवाह कर दिया।

एक दिन शक्रोत्सव के समय वे दिव्य रथ में बैठकर सार्थवाह के संग महापुरा गए नगर के बाहर नवनिर्मित अजस्र प्रसाद देखकर उन्होंने सार्थवाह से इसका कारण पूछा। सार्थवाह बोले—यहाँ के राजा का नाम है सोमदत्त। उनके सोमश्री नामक एक कन्या है जिसका सौंदर्य चन्द्र के सौंदर्य से भी अधिक है। उसके स्वयंवर के समय ये प्रासाद तैयार किये गए थे। जहाँ आमन्त्रित राजा रहे किन्तु उनमें से कोई भी चतुर न होने के कारण उन्हें लौटा दिया गया। सोमश्री अब भी अविवाहित है।

वसुदेव शक्रस्तम्भ के निकट गए और उसे वन्दना की। पहले से आयी हुई राजमहल की महिलाएँ वन्दना कर लौट रही थी ठीक उसी समय आलान स्तम्भ को उखाड़ कर एक मदोन्मत्त हाथी वहाँ आया और राजकन्या को रथ से उठाकर फेंक दिया। वसुदेव ने जब देखा कि वह भयार्त्त होकर इधर-उधर जा रही है और सहायता के लिये पुकार रही है तो वे उसके सम्मुख जाकर खड़े हो गये और हाथी की भर्त्सना कर उसे इस प्रकार शान्त होने को बोले मानो वे ही उसके महावत हों।

तब उस हाथी ने राजकन्या को छोड़कर उनपर आक्रमण किया किन्तु महाबलवान् वसुदेव ने उसे वशीभूत कर लिया। हाथी जब घबड़ा गया उसी अवसर का लाभ उठाकर वसुदेव मूर्च्छित राजकन्या को उठाकर एक निकटस्थ प्रासाद में ले गये और परिचर्या कर उसकी चेतना लौटायी। तभी उसकी धात्रियाँ आयीं और उसे राजमहल में ले गयी और सार्थवाह और वसुदेव को अन्य एक सार्थवाह कुबेर महासम्मान के साथ अपने घर ले गया।

वहाँ स्नानाहार करके वसुदेव जब एकान्त में बैठे थे तब अन्तःपुर की द्वार पालिका वहाँ आयी और उनको सम्बोधित करती हुई बोली—'राजा सोमदत्त के सोम श्री नामक एक कन्या है। कुछ दिन पहले स्वयंवर द्वारा उसने अपना पति चुनना निश्चय किया किन्तु जब उसने यति सर्वान् के केवल ज्ञान उत्सव

में देवों को विमान में बैठकर आते देखा तो उसे पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी उसी दिन से वह मौन रहती है। एक दिन एकान्त में मेरे पूछने पर वह बोली—'महाशुक्र विमान में एक देव थे। पूर्वभव में मैं उनके साथ सुखपूर्वक रहती थी। मुझे लेकर वह नन्दीश्वर द्वीप गए। वहां अर्हन्त भगवान् का जन्मोत्सव कर जब हम लौट रहे थे तभी ब्रह्म देवलोक के निकट आते-आते उनका आयुष्य शेष होने से वे च्युत हो गए। मैं दुख से आर्त्त हुई उनका सन्धान करती हुई भरतक्षेत्र के कुरू देश में गई। वहाँ मुझे दो सर्वज्ञों के दर्शन हुए। मैंने उनसे पूछा—मेरे स्वामी स्वर्ग से च्युत होकर कहाँ जन्मे हैं। वे बोले—तुम्हारा स्वामी हरिवंश राजकुल में उत्पन्न हुआ है। तुम भी स्वर्ग से च्युत होकर राजकन्या के रूप में जन्म लोगी। वह शक्रोत्सव में एक हाथी से तुम्हें बचाएगा और पुनः तुम्हारा पति होगा। उन्हें भक्तिभाव से वन्दना कर मैं स्वस्थान को लौट आयी। कालक्रम से मेरा आयुष्य समाप्त होने पर मैंने भी वहाँ से च्यव कर राजा सोमदत्त की कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया। यति सर्वान के केवल ज्ञान महोत्सव में देवों को जाते देखकर मुझे पूर्व भव स्मरण हो आया। अतः मैं मौन हो गयी हूं। मैंने यह बात राजा को बतायी। यह सुनकर राजा ने स्वयंवर में आये राजाओं को विदा दी। आप उसके पूर्व जन्म के पति हैं इसका प्रमाण आपने हाथी द्वारा उसकी रक्षा करके दिया है। मुझे राजप्रसाद द्वारा भेजा गया है। आप चलें और उसके साथ विवाह करें।' वसुदेव उसके साथ प्रसाद में गये और सोमश्री के साथ विवाह कर वहीं सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन रात्रि में नींद खुलने पर वसुदेव ने देखा—उनकी पत्नी शय्या पर नहीं है इस दुख से दुखित होकर वे अश्रु विसर्जित करते हुए उसे खोजने लगे। तीसरे दिन उसे एक कुंज के किनारे खड़े देखकर वे बोले—'भामिनी मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया था जिसके फलस्वरूप तुम इतने दिन अदृश्य रही।'—वह बोली—'आपके कल्याण के लिये मैंने एक व्रत ग्रहण किया है उसमें सात दिनों तक मौन रहता है। अब आप उस देवी की पूजा कर पुनः मेरा पाणिग्रहण करें। कारण इस व्रत का यही नियम है। उसके कथनानुसार वसुदेव ने पुनः उसका पाणिग्रहण किया। तदुपरांत देवी का प्रसाद बतलाकर उन्हें मदिरा पिलायी। मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर वसुदेव कान्दर्पिक देव की भाँति उसके साथ यौवन सुख भोग करने लगे और रतिरमण के पश्चात् उसी के साथ सो गए। सुबह जागने पर उन्होंने देखा वह सोमश्री नहीं है। अन्य कोई कन्या है। तब उन्होंने उससे पूछा हे सुन्दरी तुम कौन हो?

वह बोली—"वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर सुवर्नाभ नामक एक नगर है। वहाँ के राजा का नाम चित्रांग और रानी का नाम अंगारवती है। उनके

मानसवेग नामक एक पुत्र और वेगवती नामक एक कन्या है। मैं वही कन्या हूं। मानसवेग को सिंहासन पर बैठाकर चित्रांग ने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। मेरा भाई मानसवेग स्वभावतः ही दुराचारी है वह आपकी पत्नी को हरण कर ले गया और मेरे माध्यम से उसे अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करने लगा। किन्तु आपकी पत्नी उससे सहमत नहीं हुई और मुझे अपनी सखी बना कर आपको यहाँ से ले आने की प्रेरणा दी। उसी के अनुसार मैं यहाँ आयी किन्तु आपका रूप देख कर मुग्ध हो गयी अतः छलना का आश्रय लेकर आपसे विवाह किया। अब धर्मतः आप मेरे पति हैं और मैं भी उच्चकुलोत्पन्ना हूँ।"

सुबह वेगवती को देखकर लोग विस्मित हो गये। वसुदेव की आज्ञा से उसने सोमश्री के हरण का वृत्तान्त सुनाया।

एक दिन रात्रि के समय वेगवती के साथ यौवन सुख भोगकर जब वसुदेव क्लान्त होकर सो गये थे तभी मानसवेग आया और उन्हे उठाकर गरुड़ की भाँति तीव्र गति से ले जाने लगा। जब वसुदेव जान पाये कि कोई उन्हें उठाकर ले जा रहा है तो उन्होंने ऐसा मुष्ठि प्रहार किया कि सहसा उसने वसुदेव को छोड़ दिया फलतः वे भागीरथी नदी में जा गिरे। किन्तु संयोगवश वहाँ चण्डवेग नामक विद्याधर विद्या की आराधना कर रहा था। वसुदेव उसी पर जा गिरे। जैसे ही वे उस पर गिरे चण्डवेग की 'विद्या' सिद्ध हो गयी। तब वह वसुदेव से बोला—"हे महात्मन् आप मेरी विद्या सिद्धि मे सहायक बने अतः कहिये मैं आपको क्या दूँ। वसुदेव बोले 'यदि आप सचमुच ही प्रसन्न हुए हैं तो मुझे आकाशगामिनी विद्या दीजिए, उस विद्याधर ने उन्हें वह विद्या प्रदान की और चला गया। वसुदेव कनकखलपुर के द्वार पर खड़े होकर विद्या की साधना करने लगे।

उसी समय राजा विद्युत्वेग की कन्या मदनवेगा वहाँ आयी और वसुदेव को देखने मात्र से ही अनुरक्त होकर उन्हें उठा कर वैताग्य पर्वत पर ले गयी। वहाँ उसने कामदेव सदृश वसुदेव को पुष्पशयन नामक उद्यान में छोड़कर स्वयं अमृतधारा नामक नगर में चली गयी। दूसरे दिन सुबह मदनवेगा के तीन भाई दधिमुख, दण्डवेग और चण्डवेग जिसने वसुदेव को आकाशगामिनी विद्या दी थी वहाँ आए और उन्हें ससम्मान अपने नगर में ले गये। वहाँ उनके साथ मदनवेगा का विवाह कर दिया। वसुदेव वहीं मदनवेगा के साथ सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे।

एक दिन मदनवेगा ने वसुदेव को प्रसन्न कर उनसे एक वर माँगा और महाबली वसुदेव भी देने को सम्मत हो गए। एक दिन दधिमुख वसुदेव के पास आए और उन्हें प्रणाम कर बोले—

"दिवस्तिलक नगर में त्रिशिखर नामक एक राजा राज्य करते हैं। उनके सूर्पक नामक एक पुत्र है त्रिशिखर ने सूर्पक के लिये मदनवेगा की याचना की थी।

किन्तु पिताजी विद्युत्वेग ने यह अस्वीकृत कर दिया। कारण पिताजी ने एक बार किसी चारण मुनि से पूछा था कि 'मदनवेगा का पति कौन होगा—प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा 'हरिवंश के वसुदेव तुम्हारी कन्या के पति होंगे। भागीरथी नदी में विद्या आराधनारत चण्डवेग के कन्धे पर वे रात्रि के समय गिरेंगे। उनके गिरते ही उसकी विद्या सिद्ध हो जाएगी अतः उन्होंने त्रिशिरकर का सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया किन्तु इससे क्रुद्ध होकर त्रिशिरकर ने हमारे देश पर आक्रमण किया। और पिताजी को बन्दी बनाकर ले गया है अतएव हमारा निवेदन है कि आपने हमारी बहन मदनवेगा को जो वर देना चाहा था उसी वर में आप हमारे पिता को मुक्त करने में सहायक बनें। ऐसा कहकर कुछ दिव्य अस्त्र वसुदेव के सामने रखकर वे बोले—'हमारे वंश के मूल पुरुष थे नभि। उनके पुलस्त्य नामक एक पुत्र हुआ। पुलस्त्य के वंश में अरिंञ्यजपुर के अधिपति मेघनाथ ने जन्म ग्रहण किया उनके जँवाई चक्रवर्ती सुभूम ने उन्हें वैताढ्य पर्वत की अभयश्रेणी का राजस्व और ब्रह्म आग्नेयादि अनेक अस्त्र प्रदान किये। उसी वंश में रावण और विभीषण हुए थे मेरे पिता विद्युत्वेग विभीषण के वंशज हैं। वंश परम्परा से ये अस्त्र हमारे पास हैं। इन्हें आप लें। क्योंकि आप जैसे भाग्यशालियों के ही ये काम आयेंगे। हम जैसे मन्दभागियों के लिए ये मूल्यहीन हैं।

वसुदेव ने वे सब अस्त्र स्वीकार कर लिये और यथाविधि अभ्यास के द्वारा उन्हें सिद्ध भी कर लिया। पुण्योदय से क्या सिद्ध नहीं होता।

उधर जब त्रिशिखर को ज्ञात हुआ कि मदनवेगा का विवाह एक भूचारी के साथ हुआ है तो क्रुद्ध होकर उसने अमृतधारा नगरी पर आक्रमण कर दिया। खेचरों द्वारा प्रदत्त मायामय स्वर्णरथ में बैठकर दधिमुखादि विद्याधरों से परिवृत होकर वसुदेव उसके साथ युद्ध करने लगे और थोड़ी देर के पश्चात् ही इन्द्रास्त्र से त्रिशिखर का शिरच्छेद कर डाला। इसके बाद दिवस्तिलक नगर में जाकर उन्होंने अपने श्वसुर को मुक्त किया। वहाँ से लौटकर अमृतधारा नगर में ही सुखपूर्वक रहने लगे। इसी बीच उनके अनाधृष्टि नामक एक पुत्र हुआ।

एक दिन उन्होंने शाश्वत सिद्धायतन की यात्रा की वे जिधर भी जाते मुग्ध बने खेचर व खेचरियों की दृष्टि उन्हीं पर ही पड़ती। वहाँ से लौट कर उन्होंने वेगवती आओ कहकर मदनवेगा को समीप आने के लिये कहा। इससे क्रोधित होकर मदनवेगा शयनागार में चली गयी।

त्रिशिखर की पत्नी सूर्पनखी एक दिन मदनवेगा का रूप धारण कर मन्त्रवल से उनके घर में आग लगाकर और उन्हें अपहरण करके ले गयी। उन्हें मार डालने के उद्देश्य से उसने उन्हें आकाश से नीचे गिरा दिया। वसुदेब राजगृह के निकट घास के एक पुलिन्दे पर जा गिरे।

आस-पास के लोगों के मुख से जरासंध की प्रशस्ति सुनकर वे समझ गए कि यह राजगृह नगरी है। अतः वहाँ से उठकर वो नगरी में गए और एक जुआरियों के अड्डे में जाकर बात ही बात में एक कोटि स्वर्ण जीत लिया और उस स्वर्ण को गरीबों में दान कर दिया। यह देख कर राजकर्मचारी उन्हें बन्दी बना कर राजप्रासाद में ले गये। वसुदेव ने सैनिकों से पूछा—"जब मैंने कोई अपराध किया ही नहीं है तो मुझे बन्दी क्यों बनाया गया है।" उन्होंने प्रत्युत्तर दिया 'एक नैमित्तिक ने हमारे राजा जरासन्ध से कहा है कि जो व्यक्ति जूए में एक कोटि स्वर्ण जीतकर गरीबों को दान कर देगा उसी का पुत्र आपका वध करेगा। तुम वही हो। अतः यद्यपि तुम निर्दोष हो किन्तु राजा की आज्ञा से तुम्हारी हत्या की जायेगी' ऐसा कहकर उन्होंने वसुदेव को एक चमड़े की थैली में भर लिया ताकि लोग जान न सके फिर उस थैली को एक पर्वत के शिखर से नीचे गिरा दिया।

किन्तु बीच में ही वेगवती की धाय ने उस थैली को पकड़ लिया। वह जब उन्हें आकाश पथ से ले जा रही थी तब वसुदेव मन ही मन सोचने लगे कि लगता है चारुदत्त की तरह मैं भी मारण्ड पक्षी द्वारा पकड़ लिया गया हूं और वह मुझे आकाश में लिये जा रहा है। धात्री ने उस थैले को पर्वत के शिखर पर रखा। उन्होंने थैले के एक छिद्र से वेगवती के पैरों को देखा जैसे ही वे थैले से बाहर आये वह हे नाथ ! हे नाथ ! कहते हुए उनसे लिपट गयी। वसुदेव ने भी उसे आलिंगन में लिया और बोले—'तुम्हें मेरा पता कैसे लगा ? आंसुओं को पोंछते हुए वेगवती ने उत्तर दिया—

दुर्भाग्यवश उस समय जब मेरी नींद टूटी तो आपको शैय्या पर नहीं पाया तब दुःख के मारे अन्तःपुरिकाओं के साथ ही क्रन्दन करने लगी। उसी समय प्रज्ञप्ति विद्या ने प्रकट होकर मुझे आपके हरण और पतन की बात बतायी। आगे वह कुछ नहीं बोल सकी। मन ही मन सोचने लगी कि आप किसी मुनि के पास गए हैं उन्हीं के प्रभाव से प्रज्ञप्ति विद्या आपके विषय में अधिक कुछ बोल नहीं पा रही है।

आपके विरह में कुछ दिन काटने के पश्चात् राजा की आज्ञा लेकर मैं आपको देश-विदेश में खोजने निकली। अन्ततः शाश्वत सिद्धायतन में आपको मैंने मदनवेगा के साथ देखा। जब आप सिद्धायतन से निकले मैं अदृश्य रूप से आपके पीछे गयी। सिद्धायतन से लौटने पर आपके मुँह से जब मेरा नाम सुना तो हृदय आनन्द से भर उठा और विछोह का दुःख ही भूल गयी।

क्रोधित होकर मदनवेगा शीघ्रतापूर्वक भीतर कक्ष में चली गयी उसी समय सूर्पनखी आयी और मन्त्रबल से अग्नि जला कर मदनवेगा का रूप धारण किया और आपको हरण कर ले चली तब मैंने मानसवेग का रूप धारण किया और उसके

पीछे चली। वह मुझसे मन्त्रों और विद्या में श्रेष्ठ थी अतः मुझे अपना पीछा करने से रोका। उसके भय से जब मैं एक चैत्य की ओर दौड़ने लगी—असावधानी वश एक मुनि को उल्लंघन कर गयी फलतः मेरी विद्या नष्ट हो गयी। उसी समय मुझे मेरी धात्री मिली मैंने उसे आपको खोजने के लिये कहा। आपको खोजते हुए उसने आपको उस समय देखा जब आपको पर्वत में फेंक दिया गया था। उसने आपको मध्य में ही पकड़ लिया और यहाँ ले आयी। यह स्थान ह्रीमत पर्वत का पंचनद तीर्थ है। तत्पश्चात् वसुदेव वेगवती को लेकर एक आश्रम में गए और वहीं रहने लगे। एक दिन वसुदेव ने पाशबद्ध एक तरुणी को जल में प्रवाहित होते देखा। वे स्वयं भी दयालू प्रकृति के थे फिर वेगवती ने भी उनसे उसकी रक्षा करने को कहा। उन्होंने उसे जल से बाहर निकाला और पाशमुक्त किया। वह मूर्च्छित थी अतः जल सिंचित कर वसुदेव उसे होश में लाये। तब उस तरुणी ने वसुदेव की तीन प्रदक्षिणा देकर कहा—'हे महानुभाव आपके प्रभाव से आज मेरी विद्या सिद्ध हो गयी है अब अपने विषय में आपको बतलाती हूँ।

वैताट्य पर्वत की दक्षिणी श्रेणी पर गगनबल्लभ नामक एक नगर है वहां नमिवंशोत्पन्न विद्युतदृष्ट राज्य करते थे। एक बार वे पश्चिम महाविदेह गये और वहां एक प्रतिमाधारी मुनि को देखा। उन्हें देखकर उसने विद्याधरों से कहा यह मुनि विनाश-सूचक है। ऐसा कहकर उन्हें वरुण पर्वत पर ले गया और खेचरों को आदेश दिया —'इसे मारो।' खेचरों ने उन्हें मारना प्रारम्भ किया। किन्तु वे मुनि शुक्ल ध्यान में अवस्थित थे उन्हें उसी अवस्था में केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उनका केवल ज्ञान-उत्सव मनाने वहाँ धरणेन्द्र आये। धरणेन्द्र ने जब खेचरों को मारते देखा तो क्रुद्ध होकर उनकी विद्या नष्ट कर दी। तब वे दीन-हीन बने उनसे बोले—'हमको नहीं मालूम था ये कौन हैं, जब विद्युतदृष्ट ने कहा यह मुनि विनाशसूचक है इसे मारो तो हमने मारना प्रारम्भ कर दिया। तब धरणेन्द्र ने कहा हम इनका केवल ज्ञान महोत्सव मनाने आये हैं किन्तु तुमलोगों ने अज्ञानवश ये सब किया और अब पश्चाताप कर रहे हो तो तुम्हें तुम्हारी विद्या प्राप्त हो जायेगी। तुमलोग श्रावक धर्म ग्रहण करो। यदि तुमलोगों मे कभी भूल से भी किसी साधू या उसके उपासकों का अनिष्ट किया तो तुम्हारी विद्या तत्काल नष्ट हो जाएगी और रोहिणी आदि विद्या तो दुष्ट विद्युतदृष्ट के वंश में किसी को भी प्राप्त नहीं होगी किन्तु हाँ यदि किसी साधु या महापुरुष का दर्शन हो जाए तो वह सिद्ध हो जाएगी। ऐसा कहकर धरणेन्द्र स्वस्थान को चले गये।

क्रमशः

**जैन पत्र पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या**

**॥ प्रेक्षाध्यान ॥ मार्च १९९४ ॥**

शाश्वत स्वर, संपादकीय, प्रेक्षा-सूत्र—आचार्य महाप्रज्ञ, सपिक्खए अप्पगम-प्पएण—गणाधिपति तुलसी, अस्तित्व के ईर्दगिर्द—शंकरलाल मेहता, समता को साधे—आचार्य महाप्रज्ञ, महाप्रज्ञ की सृजनशीलता—मुनि सुखलाल, साधना का चौथा चरण-रसायन सेवन विधि—मुनि शुभकरण, सुदर्शन-मुनि धनंजय कुमार, सत्ता अनासक्ति—नेपाल पवन गंग, नेक लेखक, साधना के सूत्र—समण श्रुत प्रज्ञ, कथनी करनी का द्वंध—एक त्रासदी—सोहन राज कोठारी, बढ़ते चरण, आचार्य तुलसी नया दायित्व नया प्रस्थान—आचार्य महाप्रज्ञ
Scenee and religion—Nehal chand Jain
प्रगति विवरण—विजय सिंह कोठारी


सौजन्य से :—

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

*Proprietor :* **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001
Phone : 201929/8730/6256
Telex : 0212333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.
जि. गांधीनगर, पिन-382009.

WB/NC-330
**Vol. XVII No. 11** **TITTHAYARA** **March 1994**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.
जि. गांधीनगर, पिन-382009.